# इकाई 5 प्राचीन भारतीय वास्तुकला

**इकाई की संरचना**


5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 प्राचीन भारतीय वास्तुकला

5.3 प्राचीन भारतीय वास्तु परम्परा

5.4 सारांश

5.5 शब्दावली

5.6 अभ्यास प्रश्न की उत्तरमाला

5.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें


## 5.0 उद्देश्य

प्राचीन भारतीय वास्तुकला नामक इस इकाई के अध्ययन के बाद आप बता पायेंगे कि :

- भारतीय वास्तुशास्त्र की परम्परा कितनी प्राचीन है ?
- इस शास्त्र का विकसित रूप किन-किन देशो तक फैला हुआ था ?
- भारतीय वास्तुशास्त्र के अन्तर्गत किन-किन कलाओं का समावेश था ?
- वास्तुपरम्परा अन्य प्राचीन भारतीय कलाओं की तरह एक कला कैसे बना ?
- इस वास्तुकला के परिवर्तित रूप क्या थे ?
- अपने प्राचीन परम्परागत विद्याओं को जानकर इनके बारे में जानने की और जिज्ञासा होगी ?

## 5.1 प्रस्तावना

जैसा कि पिछली इकाइयों के अद्ययन से आप ने समझा कि प्राचीन भारतीय वास्तु से तात्पर्य केवल साधारण मानव के रहने योग्य भवन ही नहीं, अपितु राजभवन, प्रासाद, ग्राम, नगर, रथ्या, मार्ग, प्रकार, परिखा, मन्दिर अथवा देवालय, मण्डप, यज्ञ-वेदी, सभागृह, कूप, तालाब, वापी, स्तूप आदि उन सभी निर्माणों से है, जो मानव के रहने, उपयोग करने एवं उसके अभिष्टजनों तथा देवों के निवास स्थान आदि के रूप में हैं। अत: वास्तु का अर्थ केवल गृह न होकर 'गृह आदि' हो गया है। तदनुसार वास्तुशास्त्र का प्रतिपाद्य विषय मानवगृहों, प्राकारों, परिखाओं, देव-मन्दिरों, मण्डपों, बान्धों, सेतुओं एवं तड़ागों अर्थात् प्रत्येक प्रकार के भवन, क्षेत्र, कूप, तालाब, वापी, वाटिका आदि की रचना के उपायों तथा साधनों की व्याख्या करना है। हमने पिछले इकाई में अध्ययन किया कि मानसार, मयमत आदि समराङ्गणसूत्रधार के पूर्ववर्ती तथा शिल्परत्न आदि परवर्ती वास्तुशास्त्रीय ग्रन्थों में वास्तु का अर्थ तथा उसका क्षेत्र,

भवन, प्रासाद, राजमहल, देव-मन्दिरों, देव-प्रतिमाओं और पुर तक ही सीमित है, परन्तु इसके आगे के काल में समराङ्गणसूत्रधार में पुर, निवास, सभा, वेश्म तथा आसन आदि के अतिरिक्त देश के वर्णन से इस शास्त्र का विषय आगे बढ़ जाता है। इस शास्त्र की परम्परा या प्राचीनता इसी बात से सिद्ध हो सकती है कि ऋग्वेद में सर्वप्रथम वास्तु शब्द का प्रयोग भवन के अर्थ में आया है, तथा जो शास्त्र भवन सम्बन्धी व्याख्या करते हैं, उन्हें वास्तुशास्त्र कहा जाता है तथा प्राचीन काल में अधर्ववेद के उपवेद के रूप में स्थापत्यवेद भी था। बाद में स्थापत्यशास्त्र, वास्तुशास्त्र और शिल्पशास्त्र ये तीनों पर्यायवाची के रूप में व्यवहृत हुए। ऋग्वेद, जिसे संसार के प्राचीनतम साहित्य होने का गौरव प्राप्त है, उसमें वास्तु शब्द का प्रयोग भवन के अर्थ में हुआ है और समराङ्गणसूत्रधार में वास्तु के अन्तर्गत समस्त विश्व का चिन्तन हुआ है। आदिकाल में शिकारियों और मछुओं ने पहाड़ी गुफाओं में शरण ली होगी। ये गुफाएँ ही शायद मानव निवास के प्राचीनतम रूप रहे होंगे। किसान वृक्षों के झुरमुटों में रहते और सरकंड़े, घास आदि के झोंपड़े बनाते रहे होंगे। अपने पशुओं के साथ घूमनेवाले चरवाहे चमड़े के खोलों में रहते रहे होंगे और उन्हें बांसों या लट्ठों से ऊँचा करके डेरे बनाते रहे होंगे। इन्हीं गुफाओं और डेरों में बाद के वास्तुविकास के बीज मिलते हैं। मिस्र के पुराने मकानों के नमूने साक्षी हैं कि अनगढ़ द्वारों चट्टानी दीवारों और छतों वाली प्राकृतिक गुफाओं से ही पत्थर की दीवारें उठाने और उन पर पटियों की छत रखने का विचार उत्पन्न हुआ। झुरमुटों के अनुरूप झोंपड़े बने, जिनकी दीवारें परस्पर सटाकर गाड़ी हुई शाखाओं से और छत घास से बनाई गई। इस प्रकार के एकमंजिले और दुमंजिले झोंपड़े अब भी आदिवासी बनाते हैं। चमड़े के डेरे भी अरब के बद्दू और अन्य घुमंतू जातियाँ काम में लाती हैं।

समराङ्गणसूत्रधार ग्रन्थ के वास्तुशास्त्र-विषय-वर्ग नामक अध्याय में महासमा (पृथ्वी) का आगमन, सौरमण्डल की गतिविधि, सम्पूर्ण पृथ्वी का निवेशोपक्रम, वसति-योग्यता, वास-स्थान, जनपद-निवेश और सृष्टि-विभाग एवं भूगोलादि का वर्णन हुआ है। समराङ्गणसूत्रधार जैसे विशुद्ध, परिमार्जित एवं परिष्कृत वास्तुशास्त्रीय ग्रन्थ में महासमा का आगमन महदादिसर्ग (सृष्टि-वर्णन) और भुवन-कोश (भूगोलवर्णन) विश्व-योजना की ओर सङ्केत करते हैं। इस प्रकार भारतीय वास्तुशास्त्र का विषय साधारण या विशिष्ट भवनों, प्रासादों, ग्रामों, खेटकों, पत्तनों, पुटभेदनों एवं पुरों तक ही सीमित न रहकर जनपद, जनपद-समूह राष्ट्र और राष्ट्र-समूह भूमण्डल तक विस्तृत हो गया है। जब समस्त भूमण्डल और सौरमण्डल वास्तु का विषय है तो वास्तु की व्याख्या में वास्तु को भवन-निर्माण की कोठरी में बन्द कर देना बड़ा अभिशाप है। भारतीय स्थापत्य के अनुसार वास्तु-विनियोजना समस्त भूमण्डल को लेकर चलती है। भारतीय दृष्टिकोण से स्थापत्य का सम्पूर्ण भूमण्डल ही नहीं, सम्पूर्ण विश्व ही प्रतिपाद्य विषय है, क्योंकि भारतीय स्थापत्य में समस्त विश्व का चिन्तन है। कोई भी निर्मित वास्तु है, कोई भी योजना वास्तु है। अत: कहा जा सकता है कि प्राचीन भारतीय वास्तु परम्परा का बड़ा ही व्यापक दृष्टिकोण है।

## 5.2 प्राचीन भारतीय वास्तु कला

भारतीय वास्तुकला की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। साधारणतया वासस्थान या निवासस्थान को वास्तु कहते हैं एवं तत्सम्बन्धी कला को 'वास्तुकला' कहा जाता है। वास्तुकला किसी स्थान को मानव के लिए वास-योग्य बनाने की कला है। भवनों का विन्यास, आकलन और रचना तथा परिवर्तनशील समय की तकनीक एवं रुचि के अनुसार मानव की आवश्यकताओं

को संतुष्ट करने योग्य सभी प्रकार के तर्कसङ्गत निर्माण की कला, विज्ञान तथा तकनीक का सम्मिश्रण वास्तुकला की परिभाषा में आता है। वास्तुकला ललितकला की वह शाखा रही है जिसका उद्देश्य उपयोगिता की दृष्टि से ऐसे उत्तम भवनों का निर्माण करना है जिनके पर्यावरण सुसंस्कृत एवं कलात्मक रुचि के लिए अत्यन्त प्रिय, सौंदर्य-भावना के पोषक और आनन्दवर्धक हों। प्रकृति, बुद्धि और रुचि के द्वारा निर्धारित एवं नियमित कतिपय सिद्धान्तों और अनुपातों के अनुसार रचना करना इस कला का सम्बद्ध अङ्ग है। पूर्व निर्धारित योजना को साकार बनाने के साथ-साथ उसे ऐसे उपयुक्त ढंग से सुदृढ़ करना उसे अधिकतम सुविधाओं के साथ उसमें रोचकता, सौन्दर्य, महानता और एकता की सृष्टि हो सके, यही वास्तुकौशल है। प्रारम्भिक अवस्था में वास्तुकला का स्थान मानव की सीमित प्रयोजनों के लिए आवश्यक व्यवसायों में प्रायः उसे एक प्रकार से रक्षा-स्थान प्रदान करने के लिए होता है, परन्तु वास्तु-कृतियों में उनके गर्व, प्रतिष्ठा, महत्त्वाकाङ्क्षा तथा आध्यात्मिकता की प्रकृति पूर्णतया अभिव्यक्त होती है तो वे वास्तु-कृतियाँ मानवीय इतिहास में महत्त्वपूर्ण हो जाती हैं।

प्राचीन काल में वास्तुकला सभी कलाओं की जननी कही जाती थी, किन्तु वृत्ति के परिवर्तन के साथ और सम्बद्ध व्यवसायों के भाग लेने पर यह समावेशक संरक्षण की मुहर अब नहीं रही। वास्तुकला को पुरातनकालीन सामाजिक स्थिति को प्रकाश में लाने वाला मुद्रणालय भी कहा गया है परन्तु यह वहीं तक उचित जान पड़ता है जहाँ तक सामाजिक एवं अन्य उपलब्धियों का प्रभाव है। वास्तुकला के सम्बन्ध में यह भी  कहा गया है कि यह भवनों के अलङ्करण के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। जहाँ तक ऐतिहासिक वास्तुकला का सम्बन्ध है, यह अंशत:सत्य है। पुनः वास्तुकला को सभ्यता का साँचा भी कहा गया है। वास्तुकला के इतिहास पर दृष्टिपात करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्राचीनतम समय में इसका स्वरूप कुछ और ही था। यह वास्तुकला युगों के विकासक्रम में विकसी, ढली और मानव की परिवर्तनशील आवश्यकताओं उसकी सुरक्षा, कार्य, धर्म, आनन्द और अन्य युगप्रवर्तक चिन्हों के अनुरूप बनी।

## 5.3 प्राचीन भारतीय वास्तु -परम्परा

भारतवर्ष उन समृद्ध देशों में से है, जहाँ पर सांस्कृतिक परम्पराएँ अत्यन्त प्राचीन हैं। अत एव पुरातन कला-परम्परा भी इतनी ही अधिक प्राचीन है, जिनका ज्ञान हम प्राचीनतम साहित्य के अध्ययन और पुरातत्त्व-विज्ञान के अन्वेषणों से ही प्राप्त कर सकते हैं। संसार के प्राचीनतम साहित्य वेदों के अनुशीलन से विदित होता है कि आज सुसंस्कृत एवं सभ्य राष्ट्र जिन कलाओं को जानते हैं उनमें से प्रमुख कलाएं जैसे-बुनाई, बढ़ई, लोहारी तथा भैषज्य-कला आदि वैदिक युग में प्रसिद्ध थीं और वैदिकयुग में जिन कलाओं को प्रसिद्धि मिली थी, उनमें वास्तुकला भी थी। इसी प्रकार यदि हम सिन्धु-घाटी की सभ्यता से सम्बद्ध उन सांस्कृतिक प्राचीरों पर दृष्टिपात करें, जिनका अस्तित्व लगभग ई० पू० तीन हजार वर्ष माना जाता है तो यह स्पष्ट रूप से ज्ञात होता है, उस काल में भी वास्तु, मूर्ति, चित्र, भाण्ड-निर्माण और लोहवस्तु-रचना आदि अनेक भौतिक कलाएँ प्रसिद्ध थीं।

वास्तु-विद्या के ग्रन्थों  का बिहंगावलोकन मे हम देखेंगे कि बहुत से ग्रन्थ  शिल्प-शास्त्र के नाम से उल्लिखित किये गये है। 'शिल्प' शब्द का अर्थ सुन्दर  एवं उपयोगी दोनो 'कला' है; परन्तु 'शिल्प-शास्त्र' शब्द इन प्रयो मे वास्तुशास्त्र के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। परम्परा से प्रचलित जिन 64 कलाओं का इस देश में अति प्राचीन समय से उल्लेख एवं प्रचार मिलता है, उनमे वास्तु-

विद्या को एक कला में परिगणित किया गया है। सम्भवतः यह परम्परा उम सुदूर अतीत की बात है जब वास्तु-कला का पूर्ण विकास इस देश में नहीं हो पाया था। शुक्राचार्य के समय में वास्तु-विद्या का विस्तार इतना व्यापक हो गया था कि वास्तुकला के महाकलेवर में सभी प्रधान कलाएँ गतायें हो जाती थी। वैसे तो वास्तुशास्त्र का प्रधान विषय भवन-कला, यन्त्रकला, काष्ठकला, भूपणकला, आमन, सिहासन आदि विधान तथा चित्रकला आदि है । वास्तु कला में सभी प्रकार के भवन-धार्मिक, आवासयोग्य, सेनायोग्य तथा उनके उप-भवन एव उपामो, प्रत्यगो आदि का प्रथम स्थान है। पुरनिवेश, उद्यानरचमा, पण्यस्थानो, पोतस्थानो आदि का निर्माण, मार्गयोजना, सेतुविधान, रबिधान, द्वारनिवेश, तोरणविनिवेश, परिखा-खनन, वप्रनिर्माण, प्राकार-विधान, जलश्रम-योजना, भित्तिरचना, सोपान-निर्माण भी वास्तु शास्त्र के प्रधान अग है। तीसरे, वास्तु-कला में भवन-उपस्कर अर्थात् फर्नीचर, जैसे शय्या, मजूषा, त्रिविष्टब्ध, पजर, नीड, चटाई, यान, दीप एव मार्ग-दीप-स्तम्भ आदि की रचना भी सम्मिलित है। चौथे, वास्तुकला मे भूषण रचना एवं वस्त्र-रचना भी सम्मिलित है। देवभूषणों में मोलि, मुकुट, शिरस्त्रक आदि भूषण, उत्तरीय आदि वस्त्र भी सम्मिलत है। अतः जैसा पहले ही संकेत किया जा चुका है, मूर्ति निर्माण कला वास्तुकला की अभिन्न सहचरी है। लिग, देवमूर्तियों, ऋषि-मुनि आदि की प्रतिमाएँ तथा गरु इस आदि के चित्रो का रचनाकौशल इस कला का अभिन्न अंग है। वास्तु रचना भवन निर्माण अथवा पुरनिवेश के प्रारम्भिक कृत्यों, जैसे भूमिचयन, भूपरीक्षा, शकुस्थापन, दिक्साम्मुख्य एवं आयादि-निर्णय भी वास्तु शास्त्र के अग है । परन्तु प्रकृत प्रथ के लेखक की ऐतिहासिक एव तुलनात्मक अध्ययन-जन्य कला । वास्तु-शास्त्र के व्यापक क्षेत्र में शिल्प-शास्त्र चित्र शास्त्र प्रचलित है । व्यवहारत. प्रथम दो वास्तु-शास्त्र के परम्परागत विषय है। तीसरा शिल्प-शास्त्र का विषय है तथा पौषा चित्र-शास्त्र का । 'समरांगणसूत्रधार' नामक वास्तु-शास्त्र ही ऐसा एकमात्र ग्रन्थ है जिसमे यन्त्र कला भी वास्तु-शास्त्र का विषय मानी गयी है, यत कोई भी कृति वास्तु है। चित्रकला भी एक दो ही वास्तुशास्त्रीय ग्रन्थों में प्रतिपादित है। इस प्रकार प्राचीन भारतीय कला को पांच भागो में विभाजित किया जा सकता है –

1. पुर निवेश कला
2 . भवन कला
3 . मूर्ति कला
4. चित्र कला
5. यन्त्र निर्माण

### 1. पुर- निवेश

पुर निवेश य नगर निवेश से सम्बन्ध सैद्धान्तिक पक्ष का ज्ञान वास्तुशास्त्रीय ग्रन्थों से ही प्राप्त होता है परन्तु प्राचीन काल में शास्त्र की मर्यादा के अनुरूप ही नगर रचना होती थी या नहीं इसका अध्ययन आवश्यक हो जता है प्राचीन भारत में नगरो का निवेश जीवन को सुव्यवस्थित सुरक्षित एवं सुविधामय बनाने के लिए किया जाता था मनुष्य की भिन्न भिन्न आवश्यकताए सभ्यता के साथ साथ बढ़ने लगी और उन आवश्यकताओ की सहज पूर्ति सुदूर गाँव में रहने वाले व्यापारी शिल्पी कारीगर आदि की कमी को दूर करने के लिए गाँव य नगर के प्रमुख लोग इन्हें इकट्ठे करने लगे, शशक वर्ग अपने राज्य में विद्वानों, शिल्पियों गुणवानो को स्थान देने देने लगे इस तरह छोटे गाँव बड़े गाँवो में एवं बड़े गाँव नगर में परिवर्तित हो उठे ।

## प्राचीन भारत के प्रमुख वास्तुशास्त्रीय नगर



### शाकल

यह उत्तर-पश्चिम भारत का एक प्रमुख नगर था। ब्राह्मण-ग्रन्थों में इसे 'शाकल', बौद्ध साहित्य में 'सांगल' और यूनानी लेखों में 'सङ्गल' कहा गया है। यह रावी या इरावती के पश्चिम में आपगा नदी के किनारे (वर्तमान अयक) स्थित थी। महाभारत में इसे शमीपीलु और करीलों के वन के मध्य में स्थित बताया गया है।' इसके चारों ओर एक ऊँची दीवाल तथा गहरी खाई थी। यूनानी सैनिकों से जान बचाने के लिए कुछ नागरिकों ने इसे तैर कर पार किया था। इससे यह स्पष्ट है कि तीन प्रकार की परिखाओं में से यह उदक- परिखा थी। एरियन ने इस परिखा को झील कहा है। यहाँ आराम, उद्यान तथा तड़ाग आदि निर्मित थे। नगर के भीतर राजमार्ग, नालियाँ और चौराहों का भी निर्माण किया गया था। शाकल नगर वर्तमान में स्यालकोट (पाकिस्तान) के रूप में जाना जा सकता है।

### पुष्कलावती

पुष्कलावती का दूसरा नाम पुष्करावती भी था। यह आधुनिक पेशावर (पाकिस्तान) से लगभग 30 कि०मी० की दूरी पर सिन्धु नदी के पश्चिम में स्थित था। । यहाँ के नागरिक सुखी एवं सम्पन्न थे। चीनी यात्री के विवरणानुसार इस नगर की परिधि लगभग 3 मील थी। इसके उपकण्ठ पर अशोक ने एक स्तूप का निर्माण करवाया था। इस नगर की पहचान आधुनिक चारसद्दा (चाषद्दा) से की जा सकती है, जो कि सुवास्तु एवं कुभा के संगम पर स्थित है।

### तक्षशिला

तक्षशिला सिन्धु नदी के पूर्व में बसा हुआ उत्तर-पश्चिम भारत का एक प्रसिद्ध नगर था। यह गांधार की प्राचीन राजधानी थी। रामायण के अनुसार इस नगर की स्थापना भरत ने की थी, जिसका राजा उन्हीं का पुत्र तक्ष था। ई०पू० 50 में इसके चारों ओर एक पक्की दीवार खड़ी की गई। इसमें पत्थर चुनकर लगाये गये। इसकी लम्बाई लगभग 33 मील तथा चौड़ाई 15 फिट से लेकर 296 फिट तक थी। दीवार में यथास्थान तीन मञ्जिलों वाले बुर्ज (अट्टालक) बने हुए थे। बुर्ज की दूसरी और तीसरी मंजिल पर नगर की सुरक्षा के लिए सैनिक रहा करते थे। बुर्ज पर चढ़ने के लिए सीढ़ियाँ बनी हुई थी। दीवार में प्रत्येक दिशा में एक बड़ा द्वार बना हुआ था। इन द्वारों में उत्तर दिशा में स्थित द्वार, निर्माण की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण था। इसका निर्माण ऐसे स्थान पर किया गया था, जहाँ से किसी आकस्मिक आक्रमण को सरलता से रोका जा सके।

### प्रवरपुर

प्रवरपुर नगर की पहचान आधुनिक श्रीनगर (जम्मू-कश्मीर की ग्रीष्मकालीन राजधानी) से की जाती है। इसका निर्माण प्रवरसेन द्वितीय ने करवाया था। यह कश्मीर की राजधानी के रूप में विख्यात था । यह मैदान के अर्द्धचन्द्राकार पर्वत से 2 मील की दूरी पर बसा हुआ है। यह नगर ताजे पानी वाले सरोवर  के तट पर स्थित था। नगर के भवन अधिकतर दो तथा तिमञ्जले हैं, जो कि लकड़ी के बने थे। कुछ पुराने भवन तथा प्राय: पत्थरों से निर्मित मन्दिर टूटे हुए हैं। नगर के बीच से झेलम नदी बहती है। नदी के किनारे पर स्थित प्राय: सभी घरों के साथ वाटिकाएँ हैं अर्थात् नगर में वाटिका-गृहों की अधिकता है। वे गर्मी तथा वसन्त ऋतु में अत्यन्त रुचिकर लगते हैं। नगर के भीतर भाग के बहुत से घरों में वाटिकाएँ हैं। राजतरिङ्गिणी से यह भी विदित

होता है कि प्रवरपुर में भट्टरक तथा सङ्ग्रामकक्षेत्र आदि कुछ मठ बने हुए थे।

**थानेश्वर**

इस नगर का प्राचीन नाम स्थाण्वीश्वर था। यह आधुनिक दिल्ली तथा प्राचीन इन्द्रप्रस्थ नगर के उत्तर में अम्बाला तथा करनाल के मध्य में स्थित था। महाभारत में इसे सरस्वती तथा दृषद्वती नामक नदियों के बीच में स्थित बताया गया है।" बाणभट्ट ने हर्षचरित में इस नगर का भव्य वर्णन किया है। इस ग्रन्थ के अनुसार नगर के सौन्दर्य को देखकर ऐसा आभास होता था, मानो वह स्वर्ग का एक भाग हो।" इसका वैभव कुबेर की नगरी अलका के समान था। नगर में अनेक शिक्षा संस्थान, सङ्गीतशाला, मठ एवं मन्दिर विद्यमान थे। थानेश्वर नगर छठी शताब्दी के अन्त में पुष्यभूति वंश की राजधानी बन गया था। इसके समीपस्थ भू-भाग पर तराइन के दो तथा पानीपत के तीन युद्ध हुए, जो इसके महत्त्व के सूचक हैं।

**इन्द्रप्रस्थ**

इस नगर का निर्माण पाण्डवों ने खाण्डववन को जलाकर किया था। यह कुरुजनपद की राजधानी थी। महाभारतकाल में यह एक भव्य, सुव्यवस्थित और वैभव-सम्पन्न नगर था। इन्द्रप्रस्थ का क्षेत्रफल 21 मील था।' यह नगर कई परिखाओं से घिरा हुआ था। इसके चारों ओर उच्च प्राकार विद्यमान थे।' प्राकार में अट्टालक तथा द्वार (गोपुर) बने हुए थे। प्राकार पर विध्वंसकारी शस्त्र एकत्रित थे।' धवल एवं उत्तु भवनों के कारण इसकी शोभा अन्वेक्षणीय थी

**हस्तिनापुर**

हस्तिन् नामक व्यक्ति ने भागीरथी के तट पर इस नगर को बसाया था। इसके प्राकार में गोपुर बने हुए थे, जो कि बहुत ऊँचे थे। नगर का आन्तरिक भाग राजमार्गों के द्वारा विभक्त था। मार्गों के दोनों ओर हर्म्य, प्रासाद तथा दुकानें सुशोभित थीं। नगर के मध्यभाग में राजहमहल का निर्माण किया गया था। यहाँ पर अनेक सरोवर तथा उद्यान भी विद्यमान थे। यहाँ के नागरिक वेदपरायण तथा यज्ञादि में श्रद्धा रखते थे। धन-धान्य से सम्पन्न तथा धर्मनिरत लोगों से युक्त इस नगर की शोभा इन्द्रलोक के समान थी।

**मथुरा**

पुराणों में मथुरा नगरी को भारत की सात मोक्षप्रदायिका नगरियों में गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त है। इसकी स्थापना का श्रेय शत्रुघ्न को दिया जाता है। शत्रुघ्न ने मधु नामक राक्षस को मारकर तथा उस सघन वन को काटकर इस नगर को बसाया था। हरिवंश पुराण में मथुरा को अर्द्धचन्द्राकार एवं यमुना के तट पर स्थित बताया गया है। मत्स्यपुराण में अर्द्धचन्द्राकार नगर की प्रशंसा की गई है। नगरी के चारों ओर गहरी परिखा, अट्टालकों से युक्त प्राकार तथा उपवन आदि स्थित थे। वहाँ के नागरिक सम्पन्न थे।` कालिदास ने रघुवंश में मथुरा नगरी के सम्बन्ध में लिखा है कि-पौरुषयुक्त शत्रुघ्न द्वारा निर्मित कालिन्दीतटवर्तिनी मथुरा परमाकर्षक थी।

**कान्यकुब्ज**

कान्यकुब्ज भारतवर्ष का एक प्राचीन नगर था। इस नगर के संस्थापक कुश के पुत्र कुशनाभ थे। रामायण के अनुसार कान्यकुब्ज विश्वामित्र की जन्मभूमि थी।" भागवतपुराण में इसे अजामिल की नगरी कहा गया है। गङ्गा के तट पर निर्मित यह नगर तीन मील लम्बा तथा एक मील चौड़ा

था। नगर के चतुर्दिक परिखा एवं सुदृढ़ प्राकार स्थित थे और उसके भीतर अनेक उपवन, वितान, सरोवर एवं अट्टालिकाएँ विद्यमान थीं। नगर के प्रधान बाजार में सुदूर देश में विक्रय करने के लिए संख्यातीत भाण्ड केन्द्रित किये गये थे। नगरवासियों का चरित्र-सङ्गठन उच्च कोटि का था। स्थान-स्थान पर मन्दिर सुशोभित थे।

**प्रयाग**

प्रयाग शब्द की उत्पत्ति यज् धातु से हुई है, जिसका अर्थ 'यज्ञ करना' है। प्रयाग का वर्णन रामायण, महाभारत तथा पुराण आदि प्राचीन ग्रन्थों में उपलब्ध होता है। महाभारत के अनुसार यहाँ पर ब्रह्मा ने यज्ञ किया था, अत: इसका नाम प्रयाग हुआ । प्रयाग को लोकत्रय में सर्वश्रेष्ठ तीर्थ कहा है। सभी देव मिलकर इस तीर्थ की वंदना करते हैं, प्रयाग की भूमि को देवभूमि कहा गया है । प्राचीन भारतीय ग्रन्थों में प्रयाग की सीमाओं को प्रयाग-मण्डल कहा गया है। मत्स्यपुराण के अनुसार प्रयाग-मण्डल पाँच योजन तक विस्तीर्ण था।

**अयोध्या**

अयोध्या कोशल राज्य के इक्ष्वाकुवंशीय राजाओं की राजधानी प्राचीन नगरी थी। वाल्मीकीय रामायण के अनुसार यह नगरी बारह योजन लम्बी तथा तीन योजन चौड़ी था। इसके चतुर्दिक एक गहरी परिखा भी स्थित थी और सुदृढ़ किलेबन्दी के कारण यह शत्रुओं के लिए अगम्य थी। इसके चारों ओर सालवृक्षों की एक चहारदीवारी थी। नगर के प्राकार में कपाटयुक्त तोरणद्वार एवं अग्रिम सुरक्षा की दृष्टि से इसकी ऊँचाई पर यन्त्र, अस्त्र-शस्त्र और प्रक्षेपास्त्र रखे गये थे। इसके भीतरी भाग में चौड़े राजमार्ग एक-दूसरे को समकोण पर काटते थे। नगरी में स्थित विभिन्न प्रकार के रत्नों से निर्मित एवं पर्वतों की भाँति उन्नत अट्टालिकाएँ, कूटागार और विभिन्न प्रकार की चित्रकारियों से भक्त भवन जिन पर सोने का पानी चढ़ाया गया था, इसकी शोभा को द्विगुणित कर देते थे। यहाँ पर गजशाला, अश्वशाला, गोशाला आदि एवं सभी प्रकार के शिल्पियों की प्रयोगशालाएँ विद्यमान थी। पतञ्जलि ने साकेत (अयोध्या) को 'सुकोशला' कहते हुए इसके प्राकार के आठ अवयवों का उल्लेख किया है।

**अहिच्छत्र**

अहिच्छत्र उत्तर पाञ्जाल जनपद की राजधानी थी। इस बात की पुष्टि महाभारत से होती है। वर्तमान बरेली, बदायूँ, फर्रुखाबाद तथा आस-पास के जिले एवं उत्तरप्रदेश का मध्यवर्ती दोआब पाञ्चाल-प्रदेश कहलाता था और अहिच्छत्र बरेली जिले में स्थित रामनगर का प्राचीन नाम था। अहिच्छत्र की खुदाई से प्राप्त सिक्के तथा मृण्मयी मूर्तियाँ इसकी प्राचीनता, ऐतिहासिकता एवं सांस्कृतिक महत्त्व की स्थापना करते हैं। प्राचीन किले के ध्वंसावशेष, जो मीलों में बिखरे पड़े हैं, इन्हें पाण्डु का किला कहा जाता है, इसे देखने से पता चलता है कि इस किले में 34 बुर्ज (अट्टलक) थे।

**श्रावस्ती**

मत्स्यपुराण में इस नगर के संस्थापक का श्रावस्त नामक राजा  बताया गया है। वायुपुराण से ज्ञात होता है कि श्रावस्ती कोसल की राजधानी थी, जिसका शासक लव था। प्राचीन ग्रन्थों में इस नगर के परिखा, प्राकार तथा नगरद्वार आदि के यत्र-तत्र उल्लेख प्राप्त होते हैं, जिनसे ज्ञात होता है कि नगर के द्वार बहुत चौड़े थे। यथा-मज्झिम-निकाय में कोसल-नरेश प्रसेनजित को

पुण्डरीक नामक गज-पृष्ठ पर बैठकर बाहर निकलते हुए प्रदर्शित किया गया है।' यहाँ के नागरिक हाथी, घोड़े तथा पालकी पर सवार होकर राजमार्गों पर निकलते थे।' इस ग्रन्थ में प्रसेनजित के प्रासाद का भी उल्लेख मिलता है। यहाँ प्रधान नगर-द्वारों की ओर चौड़े राजमार्ग जाते थे।' था, जिसे अनाथ पिण्डिक-आराम कहा जाता था।' इम नगर में विश्राम-गृह, कुठार, कूप, तालाब तथा चबूतरे आदि का निर्माण हुआ था।

### वाराणसी

आधुनिक काल में काशी और वाराणसी एक दूसरे के पर्याय बन चुके हैं, परन्तु प्राचीन काल में दोनों पृथक्-पृथक् रूप में जाने जाते थे। काशी कोसल की तरह एक महा-जनपद थी और वाराणसी इसकी राजधानी थी। जातक ग्रन्थों में वाराणसी के सुरुन्धन, सुदस्सन, बह्मावर्द्धन (ब्रह्मवड्ढज), पुष्पवती, रम्म (रम्यगनर) तथा मोलिनी आदि नाम उपलब्ध होते हैं। वाराणसी के चारों ओर सुरक्षा के लिए एक परिखा निर्मित थी।" इसके अतिरिक्त यह नगर एक उच्च प्राकार से परिवेष्टित था। प्राकार के चतुर्दिक चार दरवाजे लगे हुए थे। यदि यात्री रात्रि-काल में देर से आते थे, तो उन्हें दरवाजों के सामने अन्दर प्रवेश करने के लिए प्रातःकाल तक प्रतीक्षा करनी पड़ती थी।" स्थापत्य-ग्रन्थों के निर्देशानुसार नगर के भीतर विभिन्न भागों में अलग-अलग जातियों एवं व्यवसाय की अवधारणा थी

### कपिलवस्तु

कपिलवस्तु बौद्ध काल का एक समृद्धशाली नगर था। यह महर्षि कपिल की तपोभूमि थी। इसी कारण इसका नाम कपिलवस्तु पड़ा। यह नगर विस्तृत परिखा तथा भव्य एवं सीधे राजपथ से युक्त एवं पर्वत की तरह ऊँचे प्राचीर से अलङ्कृत था। यह उत्तर प्रदेश के बस्ती जिले के उत्तर में स्थित था। हिमालय पर्वत के समीपस्थ होने के कारण इसकी सुषमा दर्शनीय थी। कपिलवस्तु के समीप ही लुम्बिनी ग्राम में गौतम बुद्ध के जन्म के कारण इस नगर ने अत्यधिक प्रसिद्धि प्राप्त की। यह नगर सात प्राकारों से घिरा हुआ था तथा इसके प्राकार की ऊँचाई अठारह हाथ थी। नगर में एक सन्थागार था, जो सभाभवन का कार्य देता था। यहाँ पर गणराज्य के सम्मानित सदस्य एकत्र होकर महत्त्वपूर्ण विषयों एवं जटिल समस्याओं पर विचार-विनियम करते थे।

### कुशीनगर

कुशीनगर मल्ल गणराज्य की राजधानी थी। इसका प्राचीन नाम कुशावती थी। शालवन हिरण्यवती नदी के तट पर स्थित था। इस नगर के प्राकार आदि सुसज्जित थे। इसके भीतर की जनसंख्या बहुत कम हो गई थी। नागरिक-भवनों के खण्डहर तथा भवन निर्माण में प्रयुक्त ईंटों की नींव दिखाई दे रही थी। उसके अनुसार नगर की परिधि लगभग दो मील थी। प्राचीन काल में यह नगर क्रय-विक्रय का महान केन्द्र रहा है। इस नगर की दीवार, परिखा, नगर-द्वारादि के चित्र साँची, भरहुत तथा अमरावती की कला में अङ्कित है। वस्तुतः कुशीनगर राजनीति, धर्म तथा व्यापार का एक प्रमुख केन्द्र था।

### वैशाली

वैशाली भारत का एक प्रसिद्ध नगर था। इक्ष्वाकुवंशीय राजा विशाल ने इस नगर को बसाया था,रामायण के अनुसार राम ने इस नगर को मिथिला जाते समय गङ्गा के उत्तरी तट पर खड़े होकर दूर से देखा था। तदनुसार यह नगर स्वर्ग के समान दिव्य एवं अत्यन्त रमणीय था। इक्ष्वाकु

की कृपा से इस नगर के सभी नरेश महात्मा, दीर्घायु वाले, बलवान और धार्मिक थे। वैशाली लिच्छवी गणराज्य की राजधानी थी। इसके चारों ओर नगरसुरक्षा की दृष्टि से एक दूसरे से एक गव्यूति की दूरी पर तीन दीवारें थीं। एक मिट्टी की, दूसरी ईंट की और तीसरी सम्भवतः पत्थर की रही होगी। इन दीवारों पर गोपुर (द्वार) बने हुए थे। जिनके ऊपर अट्टालकों का निर्माण किया गया था। यह नगर परिखाओं से भी घिरा हुआ था।

## 2. भवन कला

भवन निर्माण कला में जन-भवन, राज-भवन तथा देव-भवन तीनों प्रकार के भवनों का व्यापक क्षेत्र भाता है। साधारण भवनों तथा विशाल भवनों के अतिरिक्त इस साहित्य में त्रिभूमिक प्रासाद, सहस्र स्तम्भ एवं सहस्र द्वारों वाले सभा-कक्ष आदि का उल्लेख मिलता है। नगर-सन्निवेश का भी विवरण वैदिक साहित्य में उपलब्ध होता है। सम्पूर्ण वैदिक साहित्य पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि भारतीय वास्तुकला जहाँ एक ओर धार्मिक संस्कारों से अनुप्राणित है, वहाँ दूसरी ओर सौन्दर्य तथा आनन्द के तत्त्वों से पूर्ण है। मंदिर निर्माण की परम्परा का प्रथम वर्णन शतपथ ब्राह्मण में प्राप्त होता है । शिल्पियों ने भारतीय शिल्प के विभिन्न अङ्गों को कल्पना द्वारा चारुत्व से मण्डित किया। राजप्रासाद संबन्धी प्रमाण, मान, संस्थान, संस्थान, उच्छा आादि लक्षणो से लक्षित एवं प्राकार-परिक्षा-गुप्त, गोपुर, अम्बुवेश्म, क्रीडाराम, महानस, कोष्ठागार आयुधस्थान, भाण्डागार, व्यायामशाला, मुत्यशाला, सगीतशाला, स्नानगृह, भारागृह, शय्यागृह, वासगृह, प्रेक्षा (नाटयशाला), वर्षणगृह, बोलागृह, अरिष्टगृह, अन्त पुर तथा उसके विभिन्न शोमा-सम्भार, कक्षाएँ, अशोकवन, नतामडप, बापी, दारु गिरि, पुष्पवीधियाँ; राजभवन की किस-किस दिशा मे पुरोहित, सेनानी, ब्राह्मण, ज्योतिषी एव मन्त्री के निवास, जनावास घालभवन, भवनाग, भवनद्रव्य, विशिष्ट भवन, सुमाई, भूषा, दारुकर्म, इष्टकाकर्म, द्वारविधान, स्तम्भलक्षण, छाद्यस्थापन आदि के साथ वास्तुपदो की विभिन्न योजनाएँ; मान, भग एव वेष आदि।

## 3. मूर्तिकला

वैदिकवाङ्मय में भक्ति या उपासना का जो मूल बीज निहित था उसका पल्लवन परवर्ती भारतीय साहित्य और कला में मिलता है। आगमों-पुराणों की उपासना-पद्धति ने विष्णु, सूर्य, शिव आदि देवों की अर्चा और पूजा को बल दिया। उससे मूर्तियों तथा मन्दिरों का व्यापक रूप में निर्माण होने लगा और मन्दिर धार्मिक वास्तु के प्रमुख प्रतीक बन गये। मन्दिर के रूप-विधान की कल्पना एक युग का कार्य नहीं था किन्तु कलाकार ध्यानावस्थित होकर नये-नये विचारों को लेकर अपनी कुशलता दिखलाते रहे। प्राराभ में चैत्य के आकार से उन्हें प्रेरणा अवश्य मिली होगी तथा गर्भगृह* का नामकरण भी विहार में स्थित प्रतिमा स्थान को लेकर किया गया, किन्तु भारतीय वास्तुशास्त्र का भी प्रभाव कालान्तर में पड़ता गया और उसी के कारण सम्पूर्ण देश में मन्दिरों की विभिन्न रूप-रेखा सामने आई। कलाविदों ने सही विचार किया कि जो परमात्मा मनुष्य-शरीर में अंतर्निहित है, सूक्ष्म रूप में विराजमान है, उसी की प्राण-प्रतिष्ठा कर देवालय में रखते हैं। अत एव मूर्तिकारों ने उस देव की मानवाकृति तैयार की, जिसे मन्दिर के गर्भगृह में स्थापित किया गया। कृष्णदत्त वाजपेयी ने भी प्रारम्भिक मन्दिरों के आकार-प्रकार-हेतु मानव-शरीर तथा वृक्ष और पर्वत-शिखर को प्रेरणा-स्रोत बताया है। संस्थान, मान, विन्यास, आकृति, भूषा, शिखर आदि । प्रतिमा-यान, परिवार, वर्ण, रूप, विभूषण, वस्त्र, वय, आयुध एव ध्वजाओ के लक्षणों से चिह्नित विभिन्न देवो एब देवियो, यक्षो, गन्धर्वो आदि को प्रतिमाएँ।

## 4. चित्रकला

विष्णुधर्मोत्तर पुराण में तृतीय खण्ड के अन्तर्गत पैतीसवें अध्याय से चित्र परम्परा का उल्लेख प्राप्त दोता है-

**अतः परं प्रवक्ष्यामि चित्रं सूत्रं तवानघ। उर्वशीं सृजतः पूर्वे चित्रसूत्रं नृपात्मज।।**

संसार में सर्वप्रथम नारायण मुनि ने संसार के कल्याण की कामना से उर्वशी की सृष्टि बनायी, इसी सृष्टि की रचना से पहले चित्रसूत्र की रचना की, आम के रसो को लेकर महामुनि ने सर्वप्रथम सुन्दर स्त्री का चित्र बनया और यही से चित्रकला का उद्भव शास्त्रों में देखा जता है। मूर्तिकला के अन्तर्गत प्राचीनकाल में किन किन देवी या देवताओं की मूर्ति किन किन विशेष लक्षणों से युक्त होना चाहिए, इनका समुचित ज्ञान था, सौ प्रकार के देव मन्दिरों और उनकी वास्तुकला सम्बन्धित रूप विलाक्षणता, सर्वतोभद्र नामक देवमन्दिर की रचना सभी प्रकार मन्दिरों का सामान्य लक्षण देवालय निर्माण के लिए दारूपरीक्षा विधि, शिला परीक्षा विधि इश्तिकाओ को पकाने की विधि चिरस्थायी अवलेह अथवा वज्रचूर्ण बनने की विधि आदि का सम्पूर्ण ज्ञान होता था। पौराणिक काल में मन्दिरों के स्वरूप, प्राचीन मूर्तियाँ, सिक्के, मुद्राएँ आदि देखने को मिलती हैं। इन स्वरूपों को देखने से ज्ञात होता है कि प्रारम्भ में मन्दिर या देवायतन सीधे-साधे रूप में बनाये जाते थे। प्रकृतभूमि से कुछ ऊँचे स्थान पर प्रतिमा की स्थापना की जाती थी। उसके चारों ओर वेदिका या बाड़े का निर्माण होता था। बाद में वेदिका को ऊपर से भी आच्छादित कर देते थे। मथुरा, विदिशा, मध्यमिका आदि अनेक प्राचीन नगरों में सङ्कर्षण, वासुदेव आर्द के देवमन्दिरों का यही रूप था। कालान्तर में कलात्मक रुचि में अभिवृद्धि के साथ-साथ मन्दिर-वास्तु का स्वरूप भी संवर्द्धित होता गया। जैन तीर्थङ्करों, यक्षों तथा नागों के लिए प्रारम्भिक मन्दिरों का जो निर्माण हुआ उनका स्वरूप भी उपर्युक्त मन्दिरों जैसा था।

प्राचीन भारतीय स्थापत्य अथवा वास्तुकला में लकड़ियों का प्रयोग होता रहा, क्योंकि इस देश में जङ्गलों की बहुतायत थी और लकड़ी आदि स्थापत्य-सामग्री आसानी से उपलब्ध हो जाती थी। साँची और भारहुत के प्राचीन संस्थानों से इस बात के समुचित प्रमाण उपलब्ध हुए हैं। वेदिका और तोरण यद्यपि बाद के हैं परन्तु वे लकड़ी की वेदिका तथा लकड़ी के तोरण की पद्धति पर बने हुए हैं और पत्थर में उनकी अनुकृति ही नहीं, अपितु अनुवाद सा प्रतीत होते हैं। उत्कीर्ण शिलापट्टों पर जो दृश्य अङ्कित हैं उनमें भी गौखें, प्रासादिकाएँ, अण्डाकार छतें, खम्भे और छज्जे, सभा, लकड़ी और बाँस के प्रारूप हैं।' यद्यपि भारतीय वास्तुकला के विकास में जैन लोगों का भी योगदान रहा है और बहुत से प्राचीन जैन अवशेष मथुरा से प्राप्त हुए हैं। इनमें से एक जैन स्तूप का काल 777 ई० पूर्व निश्चित किया गया है परन्तु विधिवत् रूप से वास्तुकला को प्रोत्साहन सबसे पहले बौद्ध धर्म ने दिया। महात्मा बुद्ध के प्रादुर्भाव से भारतीय इतिहास में एक नवीन युग का आरम्भ होता है। ई०पू० छठी शताब्दी के साहित्यिक और पुरातात्त्विक दोनों प्रकार के ऐतिहासिक साधन अधिक परिमाण में उपलब्ध होने लगते हैं। मौर्य-युग में हम और अधिक स्थिर भूमि पर आ जाते हैं।

इस युग में बौद्ध धर्म के विकास के साथ-साथ वास्तुकला का भी विकास हुआ। मौर्य-सम्राट अशोक ने जब बौद्ध धर्म को अपनाकर उसके प्रसार के प्रयत्न किये तब स्थापत्य और मूर्तिकला की उन्नति द्रुतगति से हुई। इस काल में बड़े-बड़े स्तूपों का निर्माण किया गया, जिनमें साँची, भारहुत अमरावती और सारनाथ के स्तूप हैं। मौर्य-सम्राट अशोक ने देशभर में बौद्ध स्तूप

बनवाये। इसके बाद स्तूप-निर्माण की परम्परा बढ़ी। उत्तरी-पश्चिमी सीमान्त प्रदेश पेशावर ओर चरसद्दा में भी बड़े-बड़े स्तूप बने जिनमें चूने और मृण्मय पट्टों का बड़ा सुन्दर प्रयोग किया गया। स्तूपों के निर्माण का उद्देश्य या किसी अन्य बौद्ध संत के अवशेषों पर समाधि बनाना अथवा किसी स्थान से सम्बन्धित और जैन या बौद्ध गाथाओं में पवित्र समझी जाने वाली घटना को स्मरणीय बनाना था। इस काल में बड़ी-बड़ी भव्य गुफाएँ खोदी गईं, जिनमें चैत्य और विहारों का निर्माण किया गया। इनमें काट-काटकर सुन्दर गवाक्ष, खम्भेदार कक्ष और गज-पृष्ठाकार छतें ही नहीं अपितु मूर्तियाँ भी निर्मित की गई। इनका निर्माण दूसरी शताब्दी ई०पू० से आठवीं शताब्दी ई० तक हुआ। इनमें कार्ली, कन्हैरी, भज, कान्दन, वेदसा, नासिक, पीतलखोड़ा और अजन्ता की गुफाएँ प्रमुख हैं। अजन्ता की सुन्दर गुफाएँ इस युग की अद्भुत कृति हैं। इनमें सुन्दर चित्र बने हुए हैं, जिनमें बुद्ध की जातक कथाएँ अङ्कित हैं। भारतीय कलाओं के विकास में अजन्ता का महत्त्वपूर्ण स्थान है। गुप्तकाल में पूर्व के पृष्ठों में मन्दिर-निवेश के प्रेरणा-स्रोत के सम्बन्ध में उल्लेख किया जा चुका है। डॉ० रामनाथ के अनुसार हिन्दुओं के वैष्णव और शैव मन्दिर का विकास हुआ। गर्भगृह के बाहर खम्भेदार एक खुला बरामदा बनाया गया। हिन्दू-मन्दिर की यह मूल योजना थी। देवगढ़, बर्वासागर और भूमरा के मन्दिर इसी युग के हैं। बाद में इसमें मण्डप, अर्धमण्डप और प्रदक्षिणा-पथ जोड़ दिये गये और इस प्रकार इसकी रचनाविधि का विकास हुआ। धीरे-धीरे शिखर पल्लवित हुआ और दसवीं शताब्दी तक हिन्दू-मन्दिर एक भव्य प्रसाद बन गया। खजुराहो के मन्दिरों में इसका चरमोत्कर्ष प्रकट हुआ। उड़ीसा और दक्षिण में यही योजना विविध रूपों में विकसित हुई। दक्षिण में शिखर का स्वरूप बदल गया। वहाँ या तो अण्डाकार शिखर का प्रयोग हुआ या गोपुरम् बनाये गये किन्तु सांस्कृतिक विचार से उनमें विभेद नहीं गुजरात में लकड़ियों का प्रयोग होता था और वहाँ लकड़ी की रचना-विधि से प्रेरित तत्त्वों का बाहुल्य बराबर बना रहा। इनमें तोरण, प्रासादिकाएँ और क्षितिजाकार क्रमशः छोटी होती हुई छतें उल्लेखनीय हैं। इस देश में स्थापत्य सम्बन्धी निर्माण कार्य में ईंटों का भी प्रयोग होते रहा है। हड़प्पा सभ्यता में ईंटों से निर्माण के प्रमाण मिले हैं। स्तूपों के निर्माण में ईंटों का प्रयोग किया जाता था। जैसे-मीरपुरखास, मालोट, काफिरकोट आदि। गुप्तकाल में और उसके बाद भी ईंटों से बड़े-बड़े मन्दिरों का निर्माण किया गया, जिनमें विशेषत: भीतरगाँव, परावली, कुरारी, बोधगया, राजशाही सीरपुर और पुजारीपाली के मन्दिर उल्लेखनीय हैं। इनमें कहीं-कहीं त्रिज्याकार मेहराब और दुहरे गुम्बद का भी प्रयोग किया गया। इनमें अलङ्करण कटी हुई ईंटों या मृण्मय पट्टों से किया जाता था। इस वर्ग में भीतरगाँव का मन्दिर सर्वोत्कृष्ट कृति है। इस्लाम के भारत में आने से पहले ही इस देश में वास्तुकला अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँच गई थी और विश्वप्रसिद्ध बड़े-बड़े मन्दिरों का निर्माण हो चुका था। इनमें मामल्लापुरम् के सुन्दर रथ, पादकिल का वीरुपक्ष का मन्दिर, कांजीवरम् का कैलाश मन्दिर, तोर का बृहदेश्वर-मन्दिर, औसिया और किराड़ के मन्दिर, मुरैरा का सूर्य-मन्दिर, आबू के जैन-मन्दिर, खजुराहो के मन्दिर, ग्वालियर का सहस्रबाहु-मन्दिर और भुवनेश्वर के लिङ्गराज तथा मुकटेश्वर के मन्दिर विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। पत्थर के इन भव्यप्रासादों के अत्यन्त सुन्दर शिखर बनाये गये। इनमें देवी-देवताओं और स्त्री-पुरुषों की मूर्तियों का अलङ्करण के लिए प्रयोग हुआ। मन्दिर के साथ-साथ मूर्तिकला का भी विकास हुआ और उसने धीरे-धीरे कलात्मकता के चरम आदर्श को प्राप्त कर लिया। स्थापत्यकला में पत्थर का प्रयोग व्यापक रूप से होता था। पत्थर के खम्भे या दीवारें, पत्थर की छतें और पत्थर के ही शिखर बनाये जाते थे। छज्जे भी पत्थर के ही लगाये जाते थे। कहीं-कहीं तो एक-दूसरे पत्थरों को बिना चूने मसाले के रखकर निर्माण किया जाता था। पत्थर के कार्य में भारतीय कारीगर अत्यन्त निपुण था और परम्परागत पत्थर से ही निर्माण

कार्य करता था। यद्यपि यहाँ पर मेहरान भी बनाये जाते थे, इस बात की पुष्टि भीतरगाँव के मन्दिर से होती है, पुनरपि मेहराब बनाने की परम्परा यहाँ की नहीं थी। इस्लाम के आगमन से पूर्व इस देश में वास्तुकला पर बड़े-बड़े ग्रन्थों की रचना हो चुकी थी, जिनमें 'मानसार''मयमत' (एवीं शताब्दी) और 'समराङ्गणसूत्रधार' (११ वीं शताब्दी) विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। वास्तुकला की एक बृहत् वास्तुविधा बन गई थी। मन्दिर के छोटे-छोटे तत्त्वों का विवेचन किया जा चुका था और निर्माणसम्बन्धी एक-एक बात के निश्चित मानदण्ड स्थापित हो चुके थे। शास्त्रीयकरण की यह स्थिति कला की अत्यन्त विकसित अवस्थाओं के साथ-साथ ही सम्भव होती है। इससे भी यह स्पष्ट हो जाता है कि इस देश में मुस्लिमों के आगमन के समय भारतीय स्थापत्य, जैसा अभी कह आये है, शास्त्र भी है तथा कला भी। एक ओर इस महादेश के दोनों पथों पर स्थापत्य की महनीय एवं अद्भुत कलाकृतियों के महान् निदर्शन बिखरे पड़े हैं और दूसरी ओर इस विषय के भारतीय साहित्य-वेद, वेदांग (विशेष कर कल्प एवं ज्योतिष), इतिहास, पुराण, आगम एवं शिल्पशास्त्रीय या वास्तुशास्त्रीय प्रन्थों तथा प्रतिष्ठा एवं पद्धति से सम्बन्धित ग्रन्थो मे विवेचन है । प्रथम कलाकृतियाँ है, दूसरे कलासिद्धान्त। दोनों के समन्वयात्मक अध्ययन के बिना भारतीय स्थापत्य की आत्मा का स्वरूप नहीं पहचाना जा सकता।

परन्तु इस समन्वयात्मक पद्धति का अनुसरण बड़ा ही कठिन है। स्थापत्य, जैसा हम देखेंगे, एक उपवेद के रूप में प्रकल्पित हुआ। धनुर्वेद, आयुर्वेद एवं गान्धर्ववेद के समान स्थापत्य भी यहाँ के आये साहित्य में परिगणित था। कालान्तर मे वैदिक मनीषियों, मुनियों एवं ऐतिहासिक आरयों ने स्थापत्य शास्त्र पर निष्णात ग्रन्थो की भी रचना की। स्थापत्य शास्त्र के पूर्ण ज्ञाता एवं स्थापत्य कला के पूर्ण कर्मविद्, प्रज्ञासम्पन्न एव शीलसयुक्त स्थपतियों ने ही भारतीय स्थापत्य की विद्यमान, विमुग्धकारी कृतियों की रचना की थी। एक समय था, जब यह कारीगरी द्विजाति ब्राह्मणो, क्षत्रियो एवं वैश्यों सभी के लिए समान समादरणीय एवं उपजीव्य थी। सम्भवतः शापदग्ध विश्वकर्मा के पुत्रों के विधिविलास से यह कर्म-कौशल शूद्रों के हाथ आया। वैदुष्य हृास हो गया। लकीर के फकीर ये अपढ़ कारीगर शास्त्र को बहुत दिनों तक जीवित न रख सके। परिणामत स्थापत्य शास्त्र का ज्ञान लुप्तप्राय हो गया। लगभग ५०० वर्षों की इस हतभाग्यता से बेचारा भारतीय स्थापत्य विधुर बना बैठा रहा। आधुनिक काल के विद्वानों ने भारतीय स्थापत्य को समझने की ओर ध्यान दिया है। डा० कंमरिश का हिन्दू टेम्पुल' वास्तव में भारतीय प्रासाद के शिल्पशास्त्रीय सिद्धान्तो के आधार पर लिखा गया है। डा० भट्टाचार्य ने अपने ए स्टडी आफ वास्तु-विद्या आर हिन्दू कैनन्स आफ आर्कीटेक्चर' में प्राचीन भारतीयों को देन का सुन्दर लामाहार किया है। डा० मल्लाया ने 'तन्त्रसमुन्वय' का जो अध्ययन प्रस्तुत किया है वह भी इस दिशा में एक स्तुत्य प्रयत्न है। दत्त महाशय के 'टाउन प्लेनिग' से संबन्धित ग्रन्थ भी प्राचीन स्थापत्य कौशल का प्रतिपादन करते हैं। हमारा यह ग्रन्थ इस शास्त्र के सम्पूर्ण विषयों पर प्रकाश डालता है।

**अभ्यास प्रश्न – 1**

निम्नलिखित में से सही विकल्प का चुनाव कीजिये

1. भारतीय परम्परा में प्रचलित कलायें कितनी हैं –

   अ. 64

   ब. 32

स. 61

द. 23

2. भारत की सभी विद्याओं का मूल किससे अनुप्राणित है -

अ. भारतीय दर्शन से

ब. ज्योतिष से

स. व्याकरण से

द. इनमें से कोई नहीं

3. हड़प्पा सभ्यता में स्तूपों के निर्माण में प्रमाण मिला है-

अ. ईटों का

ब. मृत्तिका का

स. लोहे का

द. इनमे से कोई नही

4. वैशाली नगर को बसाया था -

अ. लक्ष्मण ने

ब. इक्ष्वाकुवंशीय राजा विशाल ने

स. राजा दशरथ ने

द. कोई नही

**अभ्यास प्रश्न – 2**

निम्नलिखित में से सत्य असत्य का निर्धारण कीजिये

1. थाणेश्वर नगर का प्राचीन नाम स्थाण्वीश्वर था। ( )
2. प्राचीन भारतीय वास्तु कला को 2 भागो में विभाजित किया गया है। ( )
3. ज्योतिष एवं वास्तुशास्त्र का आपस में सम्बन्ध है। ( )
4. यन्त्र कला भी वास्तु-शास्त्र का विषय है। ( )

**अभ्यास प्रश्न – 3**

रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिये –

1. ...................को सभ्यता का साँचा भी कहा गया है।
2. भारतीय वास्तुकला की परम्परा अत्यन्त ................ है।
3. हस्तिन् नामक व्यक्ति ने भागीरथी के तट पर ............नगर को बसाया था।
4. नगर-सन्निवेश का विवरण..................... में उपलब्ध होता है।

## 5.4 सारांश

हमारे देश की प्राचीन शास्त्र परम्परा मे जिन-जिन विद्याओं का एक सही उल्लेख हुआ है उनमें वास्तु-विद्या का उल्लेख नहीं देख पडता। इससे यह नहीं कहा जा सकता कि वास्तु-विद्या विद्या-रस्थानों में ही नहीं मानी जाती थी आवश्यकता आविष्कारो की जनमी कही गयी है, और भवन (निवास) सम्बन्धी आवश्यकता मानवता एव मानवसभ्यता के साथ-साथ सनातन से सर्वत्र रही है। ऋग्वेद में ही वास्तु-सम्बन्धी बहुल समेत है जिनसे तत्कालीन वास्तु-विद्या एवं वास्तुकला का सुदृढ अनुमान किया जा सकता है। यही नहीं, सिन्धु घाटी सभ्यता में तो वास्तुकला के विकास की उन्नति के सुदृढ निदर्शन प्राप्त हुए हैं। अत वास्तु-विद्या का मानव सभ्यता मे अत्यन्त आवश्यक ज्ञान सनातन से सर्वत्र चला आ रहा है। जब पुराणों और आगमों की उपासना परम्परा पल्लवित हुई तो शिव-पूजा और विष्णु पूजा की प्रबल धारा हिमाद्रि-उत्तर से दक्षिण सेतुबन्ध रामेश्वर तक बहुने लगी।

शिवभक्ति और विष्णुभक्ति, इन दो धार्मिक प्रगतियों के प्रसार द्वारा प्रतिमा-सापेक्ष इस नवीन पौराणिक धर्म के बृहत् विजृम्भण से देश के कोने-कोने में तीर्थ-स्थानो, शिवमन्दिरी एवं विष्णुमन्दिरों की स्थापना तथा उनका निर्माण प्रारम्भ हुआ। परिणामतः इस पौराणिक धर्म के प्रचार ने वास्तुकला को चरम उन्नति पर पहुंचा दिया और इस देश के विशाल भू-भाग पर दक्षिणापथ तथा उत्तरापथ इन दोनो प्राचीन भू-खण्डो में वास्तुकला के चरमोत्कर्ष के अप्रतिम एवं प्रोज्ज्वल निदर्शन मिलने लगे। इस प्रकार भारतीय वास्तु-विद्या तथा वास्तुकला का आश्रय धर्म रहा है यह तथ्य हृदयंगम हो जाता है।

वैसे तो वास्तु-विद्या और वास्तुकला दोनो का प्रवाह एक ही स्रोत से निःसृत हुआ दोनो का सनातन काल से इस देश में समन्वय रहा है, परन्तु प्रकृत में हम वास्तुविद्या पर ही विचार करेंगे । भारतीय वास्तुकला की विशेषता पर केवल थोडा-मा दृष्टिपात करना अप्रासंगिक न होगा। भारतीय जीवन सनातन से अध्यात्म भावना से प्रभावित रहा है, भारतीय कला इसका अपवाद नही। वास्तुकला के सर्मज्ञ विद्वान् डॉ० कुमार स्वामी के शब्दों मे "भारत की सभी देने उसके दर्शन से अनुप्राणित है। जहाँ तक भारतीय कला की उद्भावना का सम्बन्ध है, उसमें कलाकार के मानसिक योग एवं प्रारम्भिक धार्मिक संस्कारों का होना अनिवार्य है।" इस कथन से हमारे कथन की सत्यता स्वतः सिद्ध है कि भारतीय धर्म के कलेवर में भारतीय दर्शन को आत्मा का निवास है। बिना आत्मा के शरीर निष्प्राण है। बिना शरीर के आत्मा का अस्तित्व केवल अनुमेय है प्रत्यक्ष नहीं। अतः धर्म और दर्शन का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। यही कारण है कि भारतीय विचारकों ने जहाँ शब्द ब्रह्मवाद अथवा रस-ब्रह्मवाद एवं नाद ब्रह्मबाद की कल्पना की है, वहाँ उन लोगो ने वास्तु मे भी वास्तुवाद की कल्पना करके भारतीय वास्तुकला मे जीवन-सचार किया है। जड में चैतन्य की कल्पना ही तो दर्शन का मर्म है। भारतीय वास्तुकला की इस मौलिक विशेषता को प्राय सभी उद्भट वास्तु-शास्त्रियों में स्वीकार किया है।

## 5.5 शब्दावली

उद्भट वास्तु-शास्त्री - वास्तुशास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान्।

चित्रकला - वास्तुशास्त्र की एक विधा

गर्भगृह - मन्दिर के अन्दर का भाग जहां मूर्ति स्थापित हो।

कल्पशास्त्र - छः वेदांगो में एक जिसको वेदपुरुष के हाथ की संज्ञा प्राप्त है।

पुजारीपाली - स्थान का नाम

प्रेक्षागृह - नाट्यशाला रंगमन्च

## 5.6 अभ्यास प्रश्न की उत्तरमाला

**उत्तरमाला**

**अभ्यास प्रश्न – 1**

1. अ. 64
2. भारतीय दर्शन से
3. अ. ईटों का
4. ब. इक्ष्वाकुवंशीय राजा विशाल ने

**अभ्यास प्रश्न – 2**

1. सत्य
2. असत्य
3. सत्य
4. सत्य

**अभ्यास प्रश्न – 3**

1. वास्तुकला
2. प्राचीन
3. हस्तिनापुर
4. वैदिक साहित्य

## 5.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

5. वास्तुरत्नाकर
6. मनुष्यालय चन्द्रिका
7. वास्तु कलानिधि
8. वृहद्संहिता
9. वास्तुशास्त्र का विहंगावलोकन
10. भारतीय स्थापत्य कला का इतिहास